# प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा हेतु कक्षा शिक्षण और रचनावादी उपागम

रत्नर्तु मिश्रा*

*यह लेख प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा हेतु कक्षा शिक्षण और रचनावादी उपागम के संदर्भ में प्रस्तुत है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान तथा समाज विज्ञान में हुए अनुसंधान कार्यों पर आधारित रचनावादी उपागम के अनुसार अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है, जिसमें अधिगमकर्ता अपनी सक्रिय सहभागिता द्वारा अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर नवीन विचार और संप्रत्यय निर्मित करता है तथा अनुभवों द्वारा ज्ञान का निर्माण करता है। अधिगम संसार की व्यक्तिगत व्याख्या है जिसमें अनुभवों के आधार पर अर्थ का विकास होता है। हर विद्यार्थी व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर अर्थ का निर्माण करता है अर्थात् अर्थ निर्माण ही सीखना है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी की सक्रिय सहभागिता शिक्षा को रुचिपूर्ण बना देती है, जबकि परंपरागत शिक्षण पद्धति ज्ञान के बाह्य आरोपण पर आधारित है, जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों के समक्ष सूचनाओं की एक समान प्रस्तुति कर दी जाती है। विद्यार्थियों को इन सूचनाओं को याद करके परीक्षा में उन सूचनाओं की समान प्रस्तुति करनी होती है। स्मृति आधारित यंत्रवत शिक्षण से कक्षा का वातावरण अरुचिकर हो जाता है। आज के समय में जब विद्यार्थी पर अधिकाधिक ज्ञानार्जन का दबाव है, तब पर्यावरण शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय की परंपरागत शिक्षण पर आधारित प्रस्तुति विशेष रूप से प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों में अरुचि ही उत्पन्न करेगी। प्राथमिक स्तर पर दबावरहित रुचिपूर्ण पर्यावरण शिक्षा आज की आवश्यकता है। इस लेख में प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता, रचनावाद के सिद्धांतों और उनके आधार पर पर्यावरण शिक्षा हेतु कक्षा शिक्षण के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है।*

प्रकृति असीमित है और उसके रहस्य भी। प्रकृति के असीमित रहस्यों को जान लेने की इच्छा मनुष्य में सदा से ही रही है। प्रकृति के रहस्यों को जान लेने की मानवीय अभिलाषा के कारण हुए असीमित प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कार हुए। इन वैज्ञानिक आविष्कारों ने जीवन को अत्यधिक सुविधापूर्ण बनाया। विज्ञान द्वारा प्राप्त उपहारों ने सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करने की मानवीय इच्छाओं को और बढ़ा दिया। विज्ञान के क्षेत्र में एक के बाद एक हुई खोजों

* *प्रवक्ता*, बी.एड. विभाग, डी.बी.एस. महाविद्यालय, कानपुर 208006

के परिणामस्वरूप हुए तीव्र विकास के विपरीत परिणाम भी सामने आए। मशीनीकरण और औद्योगिक विकास के कारण प्राकृतिक पर्यावरण को अत्यधिक हानि पहुँची।

तात्कालिक लाभ की कामना से किए गए प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पारिस्थितिक संतुलन को विकृत करने का कार्य किया। अनेक वनस्पतियों और जीव-जंतुओं के विलुप्तीकरण के कारण जैव-विविधता का अस्तित्व संकटमय हो गया है, साथ ही मानव सभ्यता का भविष्य भी सुरक्षित नहीं रहा। विविध वनस्पतियों एवं जीव-प्रजातियों के विलुप्तीकरण, ग्रीन हाऊस गैसों में वृद्धि, अम्ल वर्षा, प्रदूषण, ओज़ोन परत का निरंतर क्षरण जैसी समस्याओं का जन्म जलवायु परिवर्तन का कारण बन रहा है, जिसके परिणामस्वरूप नित नवीन समस्याएँ जन्म ले रही हैं और पृथ्वी को धीरे-धीरे विनाश की ओर ले जा रही हैं। मशीनों के अत्यधिक प्रयोग ने केवल प्राकृतिक पर्यावरण को ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि सामाजिक पर्यावरण पर भी अपना प्रभाव डाला। दैनिक जीवन में वैज्ञानिक उपकरणों के उपयोग से मनुष्य ने शारीरिक श्रम करना कम कर दिया और अपने दैनिक कार्यों के लिए भी मशीनों पर निर्भर हो गया। दिनचर्या में हुए इस बदलाव से अनेक बीमारियों का जन्म होने लगा। इसके साथ ही लोगों के पारस्परिक संबंधों में भी परिवर्तन हुआ। सामाजिक संबंध एक दायरे में सीमित हो गए। एकल परिवारों में वृद्धि होने लगी। विकास की दौड़ में आगे निकल जाने की भावना ने ऐसी प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया जिसने मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी को अत्यधिक बढ़ा दिया। एक ओर प्राकृतिक संतुलन के बिगड़ने से भौतिक स्तर पर अनेक परिवर्तन हुए और अवांछित परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं तो दूसरी ओर प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने लगी। इस प्रकार अनेक पर्यावरणीय समस्याओं के जन्म से मानव-जीवन अस्त-व्यस्त और संकटमय होता जा रहा है।

निरंतर उत्पन्न होती जा रही नित-नवीन संकटपूर्ण स्थितियों का एकमात्र कारण स्वयं मानव जाति के पर्यावरण के प्रतिकूल कृत्य हैं। इस अप्रत्याशित स्थिति से बचने के लिए व्यापक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया गया, जिससे कि राष्ट्रीय और वैश्विक, दोनों ही स्तरों पर ऐसे नागरिकों का निर्माण किया जा सके जो पर्यावरण के प्रति संवेदनशील हों, जागरूक हों तथा पर्यावरण संरक्षण में अपना योगदान दें।

## प्राथमिक स्तर और पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता

आज हर स्तर पर पर्यावरण की शिक्षा दी जानी आवश्यक है, किंतु पर्यावरण संबंधी स्थायी ज्ञान के विकास के लिए शिक्षा-व्यवस्था का प्राथमिक स्तर सर्वाधिक उपयुक्त समय माना जाता है। दिल्ली विश्वविद्यालय के पारिस्थितिकी बायोलॉजी विभाग का मत है कि पर्यावरण की सही समझ व्यक्ति को तभी प्राप्त हो सकती है, जब बाल्यकाल से ही उसे पर्यावरण के संबंध में प्राथमिक जानकारी दी जाए। विभागीय विशेषज्ञों ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला है कि पर्यावरण की शिक्षा जब तक प्राथमिक स्तर से प्रारंभ नहीं की जाएगी, उच्चतर

स्तर पर दी जाने वाली शिक्षा का कोई विशेष लाभ नहीं हो पाएगा (खानकाही और अन्य, 2003)।

प्राथमिक शिक्षा जन्म के साथ आरंभ होकर जीवनपर्यंत चलने वाली शिक्षा प्रक्रिया का महत्वपूर्ण चरण है। यह विद्यार्थी के व्यवस्थित और औपचारिक अधिगम का आरंभ बिंदु है जो कि व्यक्तित्व के निर्माण में सर्वाधिक योगदान देती है। बचपन में निर्मित अवांछित आदतें उच्च शिक्षा द्वारा भी सरलता से समाप्त नहीं होतीं। मांटेसरी ने बच्चे के ग्रहणशील मस्तिष्क को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार ग्रहणशील मस्तिष्क, मानव द्वारा निर्मित समाज का आधार है (मांटेसरी, 1997)। बच्चा शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यवहार सीखना आरंभ कर देता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास में अपेक्षाकृत स्थिरता आ जाती है, किंतु उसकी मानसिक योग्यताओं में निरंतर वृद्धि होती जाती है। जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण वह जिन वस्तुओं के संपर्क में आता है, उनके विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न करता है। आरंभिक जीवन में यह ज्ञान मुख्यत: उसके परिवेश से जुड़ा होता है। परिपक्वता होने पर उसमें अपने कार्यों को स्वयं करने की भावना उत्पन्न होने लगती है। इसके साथ ही वह रचनात्मक कार्यों में रुचि लेने लगता है। वह निरंतर कुछ-न-कुछ करता रहता है। उल्लेखनीय है कि अपने आस-पास की वस्तुओं को अपने दृष्टिकोण से देखता है तथा उन वस्तुओं के नवीन और विविध उपयोग एवं अंतर्क्रिया के द्वारा आधारभूत ज्ञान स्वयं निर्मित करता है, जो उसके भावी संज्ञानात्मक विकास का आधार बनता है। विकास के प्रत्येक स्तर पर अपेक्षित व्यक्तियों, वस्तुओं एवं सांस्कृतिक उपादानों से अंतर्क्रिया एवं परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अनुभव उसके संज्ञान को उत्तरोत्तर दृढ़ करता है। बाल-मस्तिष्क की इन प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा को रुचिपूर्ण बनाना समय की माँग है।

पर्यावरण अध्ययन एक ऐसा विषय है जो कि पूरी तरह से बालक के परिवेश से जुड़ा हुआ है। अत: औपचारिक पर्यावरण शिक्षा को बालक के परिवेश से जोड़ा जाना ज़रूरी है। इस आयु वर्ग के बच्चे अपने परिवेश को अपने दृष्टिकोण से देखते और परखते हैं। अत: वे सक्रिय होकर पर्यावरण संबंधी विचार निर्मित कर सकते हैं और इस प्रकार नवीन ज्ञान का सृजन संभव हो सकता है। इस स्तर पर बच्चों को अपने परिवेश की पहचान, पर्यावरण के साथ अपने विशिष्ट संबंधों की जानकारी तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु आवश्यक उचित आदतों के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है जिसमें वे बाधारहित होकर अधिगम करते हुए अपने ज्ञान का सृजन कर सकें। वातावरण ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थी सक्रिय अधिगमकर्ता बनकर रुचिपूर्ण ढंग से पर्यावरण संबंधी ज्ञान, कौशल तथा सकारात्मक अभिवृत्तियों को आत्मसात् कर सकें और अपने परिवेश को समझते हुए निर्मित नवीन ज्ञान का उपयोग विभिन्न परिस्थितियों में कर पाएँ। इसी कारण संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता स्वीकार की गई है और अब परंपरागत शिक्षण के स्थान पर रचनावाद संबंधी विचारों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है।

## रचनावाद

बीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में व्यवहार के साथ-साथ संज्ञानात्मक विकास एवं भावनात्मक तत्वों को सम्मिलित किए जाने के बाद रचनावाद का प्रादुर्भाव हुआ। फलस्वरूप शिक्षण-अधिगम के प्रतिमान में परिवर्तन की संभावना को बल मिला। गुड और ब्रूफ़ी (1990) के अनुसार रचनावादी सिद्धांतकार अधिगम को उस प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, जिसमें उन संज्ञानात्मक संरचनाओं की प्राप्ति अथवा पुनर्व्यवस्थापन सम्मिलित होता है, जिनके द्वारा व्यक्ति सूचनाओं का प्रक्रियाकरण एवं संग्रहण करता है। ब्रूनर के अनुसार, अधिगम वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति बाह्य संसार के साथ अर्थपूर्ण अंतर्क्रिया करके अपने वर्तमान अथवा पूर्वज्ञान के आधार पर नये विचार निर्मित करता है। अत: अनुदेशन उन अनुभवों एवं संदर्भों से संबंधित होने चाहिए जो विद्यार्थी को सीखने के लिए तत्पर और सक्षम बनाते हैं। अनुदेशन इस प्रकार संरचित किए जाने चाहिए कि विद्यार्थी के लिए अधिगम अर्थपूर्ण एवं सुगम बन सके। रचनावाद के अनुसार अनुभवों द्वारा ज्ञान का निर्माण होता है। अधिगम संसार की व्यक्तिगत व्याख्या है जिसमें अनुभवों के आधार पर अर्थ का विकास होता है (मेरिल, 1991)। हर विद्यार्थी व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर अर्थ का निर्माण करता है, अर्थ निर्माण सीखता है (एन.सी.एफ़.–2005, पृ, 20)। जोनासेन (1991) का मत है कि बहुत-से मनोवैज्ञानिकों ने सीखने के लिए उपयुक्त वातावरण के विकास में रचनावाद प्रयुक्त किया है। ऑनबीन (1996) ने रचनात्मक अधिगम वातावरण के निर्माण हेतु सात लक्ष्यों का वर्णन किया है—

- ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया के साथ अनुभव प्रदान किया जाए;
- बहुपरिप्रेक्ष्यों के लिए अनुभव और व्याख्या प्रस्तुत की जाए;
- वास्तविक तथा उचित संदर्भों में अधिगम को समाहित किया जाए;
- अधिगम-प्रक्रिया में अधिगमकर्ता के स्वामित्व और स्वर को प्रोत्साहित किया जाए;
- सामाजिक अनुभवों में अधिगम को समाहित किया जाए;
- बहुप्रकारीय प्रस्तुतीकरण के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाए; तथा
- ज्ञान-निर्माण में स्व-जागरूकता को प्रोत्साहित किया जाए।

रचनावाद में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के अंतर्गत ऐसे अधिगम-वातावरण के निर्माण को महत्व दिया जाता है, जिसमें विद्यार्थी को स्वतंत्र चिंतन के अवसर प्राप्त हों तथा वह अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त कर सकें। किसी भी परिस्थिति को विद्यार्थी अपने दृष्टिकोण से देखें तथा अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर उस परिस्थिति के विषय में अपने विचार निर्मित तथा अभिव्यक्त करें। दबावमुक्त वातावरण में विद्यार्थी अधिकाधिक सीखता है। इस वातावरण में वह स्वयं अपने लक्ष्यों को निर्धारित करता है तथा उनकी प्राप्ति हेतु स्वयं मार्गों की खोज करता है। वास्तविक अधिगम तभी संभव होता है, जब विद्यार्थी स्वयं सक्रिय होकर शिक्षण प्रक्रिया में सहभागी बनता है।

Chapter 3.indd 28 10/1/2018 2:39:00 PM

शिक्षण प्रक्रिया में विद्यार्थियों के अपने अनुभवों और संदर्भों से संबंधित अनुदेशन उन्हें इच्छुक, जागरूक तथा अधिगम योग्य बनाने में सहायक होता है तथा सीखने में समायोचित सहायता उन्हें ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्तियों को सरलता से ग्रहण करने में समर्थ बनाती है। रचनात्मक उपागम शिक्षण तथा अधिगम के लिए नवीन प्रारूप प्रस्तुत करता है जो मुख्यत: विद्यार्थी-केंद्रित है।

## परंपरागत शिक्षण और रचनावादी उपागम आधारित शिक्षण में अंतर

परंपरागत शिक्षण में 'ज्ञान' को मात्र सूचनाओं का संग्रह माना जाता है तथा अध्ययन और अध्यापन प्रक्रिया में अध्यापक का कार्य ज्ञान के हस्तांतरण तक सीमित रहता है। परंपरागत शिक्षण प्रक्रिया का उद्देश्य पाठ्यक्रम में सम्मिलित पाठ्यपुस्तक के आधार पर सभी विद्यार्थियों को एक समान सूचनाएँ प्रदान करना है जो उनके समक्ष मुख्यतया पाठ की व्याख्या या प्रश्नोत्तर के माध्यम से प्रस्तुत कर दी जाती हैं। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे इन सूचनाओं को याद रखकर परीक्षा में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे। विद्यार्थियों द्वारा इन प्रश्नों के उत्तरों की प्रस्तुति बहुधा समान होती है। न्यूनतम समय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कर लेने की होड़ लगी हुई है तथा अंश से पूर्ण की ओर ज्ञान प्राप्ति, बाह्य प्रेरणा स्रोत एवं संख्यात्मक मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया की विशिष्टताएँ बन गई हैं। वर्तमान शिक्षण प्रक्रिया का उद्देश्य विद्यार्थी को कम समय में अधिकाधिक जानकारी से युक्त बना देना है, जिससे वह इस प्रतिस्पर्धी परिवेश में स्वयं को प्रतिष्ठित कर सके। यह प्रक्रिया विद्यार्थियों के विचारों तथा दृष्टिकोणों को समुचित स्थान प्रदान नहीं करती, अपितु पूर्व निर्धारित पाठ्यवस्तु को आत्मसात् करने पर बल देती है। पारंपरिक अधिगम व्यवहार में परिवर्तन है, जो विद्यार्थी द्वारा की जाने वाली अनुक्रियाओं को पुनर्बलित करके विकसित किया जाता है। परंपरागत शिक्षण में अधिगमकर्ता वह है जो यंत्रवत सीखता है और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय सहभागी न होकर केवल सुनने और याद करने का कार्य करता है। अधिगमकर्ता प्रदत्त ज्ञान को स्मृति में बनाए रखने का प्रयास करता है और कभी-कभी ही जिज्ञासाओं की संतुष्टि हेतु प्रश्न पूछता है।

परंपरागत शिक्षण के विपरीत रचनावादी उपागम पर आधारित शिक्षण में ज्ञान को बाह्य रूप से आरोपित करने के स्थान पर विद्यार्थियों के अनुभवों, विचारों तथा दृष्टिकोणों के आधार पर ज्ञान के निर्माण पर बल दिया जाता है। यह उपागम विद्यार्थी को केंद्र में रखकर शिक्षण प्रक्रिया का आयोजन करता है। इस प्रकार, अधिगम एक प्रक्रिया है, जिसमें अधिगमकर्ता अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर ज्ञान की रचना करता है। वह स्वयं क्रियाशील रहते हुए खोज करता है, प्रश्न पूछता है, अपने विचार सबके सामने प्रस्तुत करता है और सहिष्णुतापूर्वक अन्य विद्यार्थियों के विचारों को सुनता है। इस प्रकार के विचार-विमर्श द्वारा अंतर्क्रिया विकसित होती है और ज्ञान के निर्माण में सहायता मिलती है। वह स्वयं ज्ञान का सृजन करता है तथा अध्यापक सुगमकर्ता है जो अधिगम वातावरण को सुविधाजनक बनाते हुए विद्यार्थियों को स्वतंत्र चिंतन के लिए प्रोत्साहित करता है और स्वयं भी सीखता है। रचनात्मक उपागम आंतरिक प्रेरणा के विकास को महत्व देता है और गुणात्मक मूल्यांकन का समर्थन करता है।

**सारणी 1 — परंपरागत शिक्षण एवं रचनावादी उपागम आधारित शिक्षण में अंतर**

| आधार | परंपरागत शिक्षण | रचनावादी उपागम आधारित शिक्षण |
|---|---|---|
| उद्देश्य | पाठ्यक्रम में सम्मिलित पाठ्यपुस्तक के आधार पर सभी विद्यार्थियों को एक समान सूचनाएँ प्रदान करना | विद्यार्थियों के अनुभवों, विचारों तथा दृष्टिकोणों के आधार पर ज्ञान का निर्माण |
| शिक्षण प्रक्रिया | अध्यापक-केंद्रित | विद्यार्थी-केंद्रित |
| प्रेरणा | बाह्य | आंतरिक |
| कक्षा-कक्ष | अध्यापक द्वारा नियंत्रित, निष्क्रिय | दबावमुक्त, सौहार्दपूर्ण |
| अध्यापक | सूचना प्रदाता, प्रश्नकर्ता, कक्षा-नियंत्रक | सुगमकर्ता, सहयोगी, स्वयं एक अधिगमकर्ता |
| अधिगमकर्ता | निष्क्रिय श्रोता | सक्रिय सहभागी, समस्या समाधानकर्ता |
| मूल्यांकन | संख्यात्मक | गुणात्मक |

## प्राथमिक स्तर पर पर्यावरण शिक्षा और रचनावादी उपागम

रचनावादी उपागम में विद्यार्थी की सक्रियता, उसके परिवेश के साथ अंतर्क्रिया, अर्थपूर्ण अधिगम तथा अनुभवों के आधार पर ज्ञान निर्माण को महत्व दिया जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 में रचनावादी उपागम को महत्व देते हुए ज्ञान को बाहरी जीवन से जोड़ने का विचार प्रस्तुत किया गया। विद्यार्थी द्वारा लाए गए बाहरी दुनिया के अनुभवों को पुस्तकीय ज्ञान से जोड़ने पर शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया रोचक बनती है। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए कि विद्यार्थी अपने अनुभवों द्वारा विषय-वस्तु को समझे और उसमें आवश्यकतानुरूप कार्य करने की क्षमता विकसित हो सके। अत: प्राथमिक स्तर के शिक्षण में रचनात्मक उपागम विशेष उपयोगी है।

## रचनावाद आधारित कक्षा-कक्ष

अधिगम सिद्धांतों में परिवर्तन एवं तत्संबंधी उपागम अंतरण के परिप्रेक्ष्य में, एन.सी.एफ.–2005 में कहा गया है कि हमें अपने बच्चों में ऐसी समझ विकसित करनी है, जिसके द्वारा संसार से अंतर्क्रिया तथा कार्य संपादन करते हुए वे अपनी तरह से ज्ञान रचना में सक्षम हो सकें। इस पृष्ठभूमि में वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था के अंतर्गत विद्यार्थियों की मूल्यांकन विधा में भी परिवर्तन आवश्यक है। रचनात्मक उपागम पर आधारित कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों के वर्तमान विचारों एवं अनुभवों को महत्व देते हुए उन्हें सीखने के लिए स्वयं पहल करने, प्रश्नों के उत्तर तथा समस्याओं का समाधान स्वयं खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, ताकि वे सार्थक स्वतंत्र चिंतन कर सकें और अपनी बौद्धिक पहचान निर्मित कर सकें। यह सब ऐसे वातावरण में संभव हो सकता है, जहाँ प्रकरण बच्चों की रुचि से संबंधित हो, स्वयं प्रश्न विकसित करने और समस्याओं को परिभाषित करने का प्रशिक्षण मिले और वे स्वयं उत्तर खोजकर निर्णय लेने में संतुष्टि का अनुभव करें। इस कक्षा-कक्ष में परस्पर संवाद का स्थान महत्वपूर्ण है। रचनावादी उपागम में विश्वास करने वाले शिक्षक एक सुगमकर्ता के रूप में बच्चों के आस-पास उपस्थित रहते हैं तथा उनके द्वारा अनुभव की गई कठिनाइयों को दूर करने में अपना अनुभवी सहयोग देते हैं। विद्यार्थियों के अनुभवों को वास्तविक परिस्थितियों से संबंधित करके उन्हें संसार से परिचित करवाया जाता है ताकि वे अमूर्त प्रत्ययों को समझने के लिए तत्पर

हो सकें। रचनावादी शिक्षाविदों के अनुसार सभी अधिगमकर्ता समान रूप से समान बातें नहीं सीखते, वरन् अनेक परिस्थितियों में तथा संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में अधिगमकर्ताओं की व्याख्या भिन्न हो सकती है। शिक्षण प्रक्रिया में इस भिन्नता का उपयोग आवश्यक है।

अपने परिवेश से विद्यार्थियों का गहरा जुड़ाव, उससे प्राप्त अनुभवों और अनुभवों की व्यक्तिगत व्याख्या का पर्यावरण शिक्षा में प्रयोग महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है, क्योंकि पर्यावरण शिक्षा का लक्ष्य मात्र पर्यावरण संबंधी सूचनाएँ एकत्रित करना अथवा संप्रत्ययों का विकास ही नहीं है, वरन् पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास तथा पर्यावरण संरक्षण संबंधी कौशलों का विकास भी है। प्राथमिक स्तर पर औपचारिक विद्यालयी शिक्षा को आस-पास के पर्यावरण तथा पारस्परिक अंतर्संबंधों की जानकारी, पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति समझ, पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक उचित आदतों के विकास से जोड़ा जाना चाहिए। उपयुक्त पाठ्यवस्तु के चयन के पश्चात् उसे स्थानीय संदर्भ से संबंधित करके अनुकूल शिक्षण-विधियों द्वारा प्रेषित किया जाना, पर्यावरण शिक्षा का अभीष्ट अंग है। पर्यावरण शिक्षा का पाठ्यक्रम स्थानीय आवश्यकताओं एवं वरीयताओं से जुड़ा होना चाहिए (गुप्ता और अग्निहोत्री, 2011)। पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में पाठ्यक्रम का स्थानीय संदर्भ में विकास अत्यधिक महत्वपूर्ण है। संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया में प्रत्येक विद्यार्थी का एक निजी विचार क्षेत्र होता है। यह विचार क्षेत्र उसके अपने निजी वातावरण से संबद्ध होता है। यह वातावरण ही उसका स्थानीय संदर्भ है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 में उल्लिखित किया गया है कि बच्चे का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण अधिगम प्राप्ति के लिए प्राथमिक संदर्भ होता है, जिसमें ज्ञान अपना महत्व अर्जित करता है। परिवेश के साथ अंतर्क्रिया करके ही बच्चा ज्ञान का सृजन करता है और जीवन में सार्थकता पाता है। हालाँकि, पाठ्यपुस्तकों की संकल्पना और शिक्षाशास्त्रीय व्यवहार में हमेशा से ही कुछ हद तक समझ की अवहेलना की गई है। इसीलिए इस दस्तावेज़ में हम शिक्षा को प्रासंगिक बनाने पर ज़ोर दे रहे हैं। सीखने को बच्चे के परिवेश में स्थित करने पर स्कूल एवं बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण तथा स्कूल के बीच की सीमा को सरंध्र बनाने का अपना अनुभव, ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश का बेहतर माध्यम होता है, बल्कि इसलिए भी ज्ञान का मतलब ही दुनिया से जुड़ना है। यहाँ 'सरंध्र' शब्द के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण और स्कूल के बीच की सीमा को ऐसा बनाने से है कि बच्चा अपने वातावरण और अपने विद्यालय के वातावरण को अलग-अलग न समझे, बल्कि वह स्कूल के अनुभवों को अपने दैनिक अनुभवों से और सामान्य जीवन के अनुभवों को विद्यालय से जुड़ा हुआ समझे। जो अनुभव वह विद्यालय में प्राप्त करे, उनका उपयोग वह अपने जीवन में कर पाए और विद्यालय से बाहर मिलने वाले अनुभवों का विद्यालय में प्रयोग कर अपने ज्ञान का स्वयं सृजनकर्ता बन सके, जिस पर रचनावाद में मुख्य बल है।

अधिगम-प्रक्रिया में परिवेश के साथ अंतर्क्रिया का विशेष मूल्य है। परिवेश से जो शिक्षण होता है, वह सजीव व रोचक होता है और उससे बच्चे की रचनात्मक क्षमता का विकास होता है। बच्चा जब अपने बुज़ुर्ग से परिवार या वंश के संबंध में जानकारी जुटाता है, तो उसमें अपने बुज़ुर्ग के प्रति सम्मान का भाव बढ़ता है। इस प्रकार के शिक्षण में अपार संभावनाएँ हैं। इससे बच्चे में जिज्ञासा, प्रश्न पूछने, सिलसिलेवार सोचने, सूचना को विश्लेषित और वर्गीकृत करने की क्षमता बढ़ती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 में भी ज्ञान प्राप्ति में बच्चे द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका पर फिर से ज़ोर दिया गया है और सामाजिक-सांस्कृतिक दर्शन में 'ज्ञान का सामाजिक निर्माण' एक महत्वपूर्ण सिद्धांत रहा है। 'ज्ञान का सामाजिक निर्माण' अर्थात् अपने परिवेश की अंतर्वस्तु के साथ सक्रिय जुड़ाव। यह मुक्त अधिगम पद्धति है। इसमें 'पहुँच और समता' है 'विविधता' और 'लचीलापन' है और यह बच्चे की आवश्यकता और रुचि के अनुकूल है (मित्तल, 2010)। अधिगमकर्ता अपने आस-पास के प्राकृतिक और सामाजिक, दोनों प्रकार के वातावरण से प्राप्त अनुभवों के माध्यम से अपने पर्यावरणीय ज्ञान की रचना कर सकता है। संस्कृति बहुल भारतीय परिप्रेक्ष्य में भौगोलिक स्थितियाँ और सामाजिक परिस्थितियाँ समान नहीं हैं। अलग-अलग क्षेत्रों के विद्यार्थियों के अनुभव भी अलग-अलग होते हैं। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों के पर्यावरणीय अनुभवों में स्पष्ट भिन्नता होती है। इन क्षेत्रों की पर्यावरणीय समस्याएँ और पर्यावरण संरक्षण के तरीके भी अलग-अलग होते हैं। इस कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विद्यार्थियों के स्थानीय संदर्भ में भी पर्याप्त अंतर होता है। स्थानीय अनुभवों से विषय-वस्तु को जोड़ते हुए विद्यार्थियों को विस्तृत ज्ञान दिया जाना उपयुक्त सिद्ध हो सकता है। विद्यार्थियों के दैनिक जीवन के सामान्य कार्य और लोकजीवन की परंपराओं का शिक्षा प्रक्रिया में उपयोग पर्यावरणीय ज्ञान के निर्माण में विशिष्ट भूमिका निभा सकता है। विद्यार्थी अपने प्राकृतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरणीय अनुभवों के माध्यम से उपयुक्त पर्यावरणीय ज्ञान का सृजन कर सकते हैं। विद्यार्थी किसी भी क्षेत्र के हों, पर्यावरण संबंधी तथ्यों से उन्हें अवगत कराने के लिए उनके परिवेश से जोड़कर पाठ का आरंभ करने से वे कक्षा में सक्रिय होकर अपने अनुभवों की सहज अभिव्यक्ति कर पाएँगे। विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत अनुभवों को पाठ्यवस्तु के साथ जोड़ते हुए आगे बढ़ा जा सकता है। पाठ्यवस्तु की परिवेश से संबद्धता विद्यार्थियों के मन में सीखने के मानसिक दबावों को कम करेगी। सांस्कृतिक संदर्भ में उपलब्ध उदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण तथा स्थानीय परिवेश में उपलब्ध संसाधनों एवं वस्तुओं का शिक्षण प्रक्रिया में अधिकतम उपयोग निश्चित रूप से बच्चों में प्रकृति के प्रति मित्रवत् व्यवहार तथा पारिस्थितिकी के प्रति जागरूकता विकसित करेगा तथा उनमें सकारात्मक मनोवृत्ति भी विकसित हो सकेगी। साथ ही साथ बच्चों में आचरण-विचार की शुद्धता, स्वच्छता एवं स्वास्थ्य संबंधी आदतों की नींव भी बाल्यकाल

में ही पड़ सकेगी। जिस अनुपात में कक्षा-कक्ष की आंतरिक शिक्षण प्रक्रिया बाह्य जीवन से संबंधित होगी, उसी अनुपात में नीरस वातावरण की समाप्ति तथा रुचिपूर्ण शिक्षा प्रणाली का विकास संभव होगा।

पाठ्यवस्तु के स्थानीय संदर्भ में विकास के साथ-साथ विद्यार्थियों के समक्ष उसका समुचित प्रस्तुतीकरण भी अपरिहार्य है। पाठ्यवस्तु इस प्रकार संप्रेषित हो कि विद्यार्थी उसे सरलता से समझें और सीख सकें। कम आयु के विद्यार्थियों में अमूर्त तथा विस्तृत प्रत्ययों को समझने, उन पर विचार करने तथा मात्र सुनकर ही अथवा पुस्तक में पढ़कर वस्तु की पूर्ण कल्पना करने की क्षमता नहीं होती। अत: यह आवश्यक है कि विभिन्न अमूर्त प्रत्ययों को इस प्रकार से विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए कि वे अपनी क्षमता के अनुरूप सीख सकें तथा अनुभव प्राप्त कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त शिक्षण-अधिगम सामग्री का उपयोग अपरिहार्य है। शिक्षण-अधिगम सामग्री के शिक्षण प्रक्रिया में उपयोग से पाठ्यवस्तु का प्रस्तुतीकरण स्पष्ट, रोचक तथा अर्थपूर्ण बनता है और ज्ञान का स्थायित्व संभव होता है। विद्यार्थियों की जिज्ञासु और क्रियाशीलता जैसी प्रवृत्तियों की संतुष्टि के उचित अवसर प्राप्त होते हैं। सृजनात्मक क्षमता के प्रकटीकरण के अवसर भी उपलब्ध होते हैं। शिक्षा आयोग (1964 – 66) ने कहा कि शिक्षण की गुणवत्ता के विकास के लिए प्रत्येक विद्यालय में शिक्षण सामग्री की पूर्ति आवश्यक है। यह देश में वस्तुत: शैक्षिक क्रांति लाएगी। (कुलश्रेष्ठ, 1988)।

शिक्षण-अधिगम सामग्री से तात्पर्य कक्षा-कक्ष में पाठ योजना के अनुसार विशिष्ट अधिगम उद्देश्यों की सहायता हेतु शिक्षक द्वारा प्रयुक्त शैक्षणिक सामग्री के स्पेक्ट्रम से है (अबाउट. कॉम एलीमेंट्री एजुकेशन, 2014)। शिक्षण-अधिगम सामग्री में प्रत्येक वह सामग्री शामिल है जो कि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में सहायता करती है। शिक्षण-अधिगम सामग्री में चित्र, कविता, कहानी, क्रियाकलाप एवं स्व-अधिगम सामग्री आदि सभी को सम्मिलित किया जाता है। चित्रों को देखने में, कविताओं को याद करने में, कहानियाँ सुनने में विद्यार्थियों की विशेष रुचि होती है। चित्रों द्वारा अप्रत्यक्ष ज्ञान को प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करना संभव होता है। उपयुक्त लय और बालमन की कोमल भावनाओं से युक्त कविताएँ बच्चों के मन को अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लेती हैं। कविता द्वारा आस-पास के पर्यावरण, प्राकृतिक दृश्यों आदि का वर्णन बच्चों के लिए आनंददायक होता है। छोटे बच्चों के लिए कहानियाँ भी अत्यधिक आकर्षक होती हैं। नन्हें बच्चे खेल-खेल में कहानियों के माध्यम से

बहुत कुछ सीख लेते हैं और उनमें कल्पनाशीलता जैसा गुण भी विकसित हो जाता है। कविता और कहानियों को बच्चों के अपने पर्यावरण से जोड़कर प्रस्तुत किया जा सकता है। कम आयु के बच्चों में सदा ही कुछ-न-कुछ करते रहने की भी प्रवृत्ति होती है। जब कक्षा में ही उन्हें कुछ कार्यो को करने के अवसर प्राप्त होंगे, तब शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में उनकी रुचिपूर्ण सहभागिता संभव हो सकेगी। इस स्थिति में कक्षा शिक्षण में क्रियाकलाप का विशेष महत्व है। करके सीखना, निरीक्षण-परीक्षण द्वारा सीखना, स्वानुभव द्वारा सीखना जैसी मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग अधिगम में वृद्धि के लिए आवश्यक माना जाता है। इन विधियों द्वारा शिक्षण-प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षण-अधिगम सामग्री के रूप में क्रियाकलाप का प्रयोग सहायक सिद्ध होता है।

यह तथ्य भी उल्लिखित करना आवश्यक है कि सभी विद्यार्थियों को अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति के समुचित अवसर प्राप्त हों, क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी की अधिगम क्षमता में भिन्नता विद्यमान होती है। शिक्षा प्रक्रिया में इस भिन्नता को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से प्राथमिक स्तर की उच्च कक्षाओं में स्व-अधिगम सामग्री का उपयोग महत्वपूर्ण है। स्व-अधिगम सामग्री द्वारा विद्यार्थियों में स्वत: अध्ययन की आदत विकसित होती है और उन्हें अपनी गति और क्षमता से सीखने के अवसर भी प्राप्त होते हैं। इसलिए वर्तमान परिस्थितियों में स्व-अधिगम में सहायक शिक्षण-अधिगम सामग्री की आवश्यकता अनुभव की जा रही है, जिसकी सहायता से विद्यार्थी व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर अधिगम अनुभव प्राप्त कर सकें। साथ ही, शिक्षण-अधिगम सामग्री का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थी निरंतर सक्रिय रहकर रुचिपूर्वक अध्ययन कर सकें। इसके लिए आवश्यक है कि स्पष्ट उद्देश्यों के साथ विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण एक इकाई के रूप में किया जाए। विद्यार्थियों के दैनिक जीवन और आस-पास के परिवेश से जुड़ी जानकारियाँ चित्रों, कविताओं, कहानियों के माध्यम से रोचक ढंग से स्व-अधिगम सामग्री में प्रस्तुत की जाएँ ताकि विद्यार्थियों की रुचि विषय-वस्तु के अध्ययन में बनी रहे। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि क्रियाकलापों का भी समावेश किया जाए, जिससे कि स्व-अधिगम सामग्री के अध्ययन में उनकी सक्रियता निरंतर बनी रहे और वे अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति कर पाएँ। इसके अतिरिक्त, विद्यार्थियों को स्व-मूल्यांकन के अवसर भी प्राप्त होने चाहिए जिससे कि वे स्वयं द्वारा अर्जित ज्ञान की जाँच कर सकें।

पर्यावरण शिक्षा की विषय-वस्तु को विद्यार्थियों के स्थानीय परिवेश से जोड़कर पाठ्य सामग्री द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि वे सूचनाएँ खोजने के लिए प्रेरित हों। इस परिप्रेक्ष्य में शिक्षकों का दायित्व है कि वे विद्यार्थियों को इस प्रकार प्रेरित करें कि वे रचनावाद के सिद्धांतों के आधार पर पाठ्य सामग्री के प्रस्तुतीकरण से अपने अनुभवों को जोड़ पाएँ साथ ही उन्हें अपने व्यक्तिगत अनुभव व्यक्त

करने के अवसर भी उपलब्ध कराएँ। पर्यावरण से संबंधित खेल, कविता, कहानी आदि के द्वारा शिक्षा को रोचक बनाया जा सकता है। विद्यार्थियों से उनके अनुभव लिखवाए भी जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कार्य भी दिए जा सकते हैं जिन्हें विद्यार्थी व्यक्तिगत के साथ-साथ सामूहिक रूप में भी कर सकें। इस प्रकार, विशेष सावधानीयुक्त निर्मित पाठ्य सामग्री के अध्ययन द्वारा विद्यार्थी अधिगम प्रक्रिया में सहभागी बन सकेंगे और पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने में समर्थ हो पाएँगे।

मूल्यांकन शिक्षण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण सोपान है। रचनावाद में गुणात्मक मूल्यांकन को महत्व देते हुए विद्यार्थियों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान किए जाते हैं। इसके अनुसार सभी अधिगमकर्ता समान बातें नहीं सीखते वरन् विभिन्न अधिगमकर्ताओं द्वारा किया गया अधिगम भिन्न-भिन्न होता है। रचनावाद आधारित मूल्यांकन व्यक्तिनिष्ठता को महत्व देता है, जहाँ व्यक्तिगत प्रस्तुति महत्वपूर्ण है। पर्यावरण शिक्षण में इस प्रकार का मूल्यांकन विशेष महत्व रखता है। विद्यार्थी जब प्रश्नों के उत्तर अपने परिवेश से जुड़े अनुभवों के आधार पर देंगे तब न केवल उनके द्वारा अर्जित ज्ञान का स्थायीकरण होगा, अपितु उन्हें परीक्षा के दबाव से भी मुक्ति प्राप्त होगी और उनके व्यक्तिगत विचार परिलक्षित होंगे, जिससे ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया पूर्णता को प्राप्त कर सकेगी।

## सुझाव

पर्यावरण शिक्षा आज के समय में आवश्यक है, किंतु यह भी आवश्यक है कि पर्यावरण शिक्षा का स्वरूप तथा प्रस्तुतीकरण ऐसा हो कि विद्यार्थी रुचिपूर्वक पर्यावरण संबंधी विषय-वस्तु को सरलता से आत्मसात् कर सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं का अनुपालन आवश्यक है, जो निम्नलिखित हैं—

- स्थानीय पर्यावरण के आधार पर विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण;
- विद्यार्थी के प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण को महत्व;
- विद्यार्थी के दैनिक जीवन के सामान्य कार्य और लोकजीवन की परंपराओं का शिक्षा-प्रक्रिया में उपयोग;
- विद्यार्थी द्वारा उसके अपने परिवेश से लाए गए अनुभवों का शिक्षण प्रक्रिया में प्रयोग;
- विद्यार्थियों की सक्रियता में वृद्धि;
- समस्या-समाधानकर्ता के रूप में अधिगमकर्ता का विकास;
- सामूहिक क्रियाकलापों पर आधारित शिक्षण;
- पर्यावरण से संबंधित खेल, कविता, कहानी आदि का विशेष रूप से प्रयोग;
- पर्यावरण आधारित स्व-अधिगम सामग्री की व्यवस्था;
- स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर;
- गुणात्मक मूल्यांकन को महत्व; तथा
- परीक्षा के दबाव से मुक्ति।

Chapter 3.indd 36 10/1/2018 2:39:03 PM

इन सुझावों के उपयोग से निश्चय ही विद्यार्थियों को पर्यावरण संबंधी विषय-वस्तु को रोचक ढंग से ग्रहण करने के अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। वे अपने स्वयं के परिवेश से लाए गए अनुभवों का उपयोग करते हुए अपने पर्यावरण संबंधी ज्ञान का निर्माण कर सकेंगे। न केवल विद्यालय, अपितु विद्यालय के बाहर भी वे स्व-निर्मित ज्ञान का उपयोग कर पाएँगे और उनके द्वारा किया गया अधिगम सार्थक सिद्ध हो सकेगा। रचनावाद के सिद्धांतों का प्रयोग शिक्षा को दबाव मुक्त बनाएगा, हमारी कक्षाएँ विद्यार्थियों के आनंद और उल्लास का केंद्र बनेंगी तथा रुचिपूर्ण पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति संभव हो सकेगी।

## संदर्भ


अबाउट. कॉम. एलीमेंट्री एजुकेशन. 2014. *टीचिंग/लर्निंग मैटीरियल्स*.

कुलश्रेष्ठ, ए. के. 1988. *गणित शिक्षण*. सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ.

खानकाही, एन. और अन्य. 2003. *पर्यावरण दशा और दिशा*. डायमंड पॉकेट बुक्स, नयी दिल्ली.

गुड्स, टी.टी और ब्रोथी जे.एस. 1990. *एजुकेशन साइकोलोजी — ए रियलिस्टिक अप्रोच* (दूसरा संस्करण). लॉन्गमैन, व्हाइट प्लेन्स, न्यूयॉर्क.

गुप्ता, आर. और एन. अग्निहोत्री. 2011. पर्यावरण शिक्षा के स्वरूप की वर्तमान में प्रासंगिकता. *शिक्षा चिंतन*.

जोनासेन. 1991. *जोनासेनस कंस्ट्रक्टिविस्ट प्रिंसिपल्स*.

पांडा. बी.एन. 2006. कंस्ट्रक्टिविज़्म एंड द पैडागॉजी ऑफ़ एजुकेशन फ़ॉर पीस. *जर्नल ऑफ़ इंडियन एजुकेशन*. 30(2), पृ. 21–29. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

ब्रूनर, जे. *कंस्ट्रक्टिविस्ट थ्योरी*.

मांटेसरी, एम. 1997. *ग्रहणशील मन — बाल मनोविज्ञान का विवेचन*. ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

मेरिल, एम.डी. 1991. कंस्ट्रक्टिविज़्म एंड पीपुल इवेल्यूएशन. संपादन में अग्रवाल एम. 2007. *जर्नल ऑफ़ इंडियन एजुकेशन*. 33(1), पृ. 16. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

मित्तल, एल. एन. 2010. आस-पास के परिवेश से शिक्षण. *भारतीय आधुनिक शिक्षा*. 31(1), पृ. 22 – 24.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.

रुचिपूर्ण शिक्षा प्रबोधिका. 1998. राज्य स्तरीय रुचिपूर्ण शिक्षा प्रकोष्ठ. शिक्षा निदेशालय, प्राथमिक शिक्षक संघ एवं यूनीसेफ, उत्तर प्रदेश.

हॉनबीन. 1996. *हॉनबीनस कंस्ट्रक्टिविस्ट प्रिंसिपल्स*.